गुब्बारा-उम्र बच्चा

वो एक सुबह थी
जबकि धूप अभी आई ही थी
शायद उस दिन रविवार हो
इसलिए कुछ अलसाई-सी थी
एक गुब्बारा उम्र बच्चा
अपने बांस में टांके रंगीन गुब्बारे
और अपनी पींपनी का मुंह उठाए
खर लहराता गलियों में फिर रहा था
जिन्हें लुभाते नहीं थे गुब्बारों के लहराते रंग
उन्हें वो पींपनी के सुर से बुलाता था
और वो निकल आए थे कई गुब्बारा-उम्र बच्चे
अपने पिताओं की उंगलियां पकड़े, कुतों का कोना थामे
और वो अपने बांस से तोड़ एक-एक गुब्बारा
थमाता था

ठहरो ठहरो
देखो देखो
क्लोज-अप में लो
उन चार हथेलियों के बीच हुए विनिमय को
एक हथेली गुब्बारा थामे बढ़ती थी
दूसरी हथेली को थमाने
और एक जोड़ी आंखें
उन तिरते रंगों पर तैरती थामती थी उन्हें
एक जोड़ी आंखें अगोरती उन्हें
थाम लेती थी

जबकि फूल और पत्तियों से ओस उड़ गई थी
एक गुब्बारा उम्र बच्चा
फिरता था गलियों में गुब्बारा बेचते
गलियों में; जहां कटखने कुत्ते थे
गाएं थी मरखनी, शोहदे थे मुस्टंड़े थे
उसकी कमसिनी को ठगने के लिए पा आह्लादित
एक गुब्बारा-उम्र बच्चा
तोड़-तोड़
एक-एक रंग
थमाता था

वहां बदलियों से ढंका था सूरज
और सुबह फूट पड़ने को कसमसा रही थी
उस गुब्बारा उम्र चेहरे पर

फुटबॉल

ठोकरों में नहीं होती फुटबॉल
आंखों में होती है
उछलती, मचलती, किलकारी भरती
नींदों में, खाने के कौरों में, स्कूल के बस्ते में
गणित की कक्षा में होती है फुटबॉल

सिर्फ फुटबॉल नहीं लुढ़कती
बच्चे का उछलता धड़कता दिल भी
लुढ़कता है फुटबॉल के साथ-साथ
भला खुद का दिल कोई
कैसे रख सकता है ठोकरों में

सिर्फ बच्चा नहीं खेलता
फुटबॉल खुद भी बच्चे के साथ खेलती है
उसी अल्हड़ता के साथ

कोई अल्हड़ फुटबॉल
क्या चमड़ा भर हो सकती है !

हड़बड़ाते, हांफते पांवों
उछलते, धड़कते दिलों
चौकन्न, चिपकी सी आंखों को
अपनी सींवनों में बसा रखा है
इन अल्हड़ फुटबॉलों ने

सींवनों से तने चमड़े के भीतर
क्या सिर्फ अंधेरा और हवा ही है
क्या नहीं हो सकता वहाँ भी
कोई उछलता, धड़कता दिल

मनोज कुमार मीणा